संपादक
सपना सोनकर

सह-संपादक
रूपनारायण सोनकर

कार्यकारी संपादक
डॉ. एन. पी. प्रजापति
प्रोफेसर बलिराम धापसे

अतिथि संपादक
प्रोफेसर विजय कुमार रोडे

नागफनी

A Peer Reviewed Referred Journal

(अस्मिता, चेतना और स्वाभिमान जगाने वाला साहित्य)

UGC Care Listed त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका
ISSN-2321-1504 Naagfani RNI No. UTTHIN/2010/34408
वर्ष 11, अंक 39, अक्तुबर-दिसंबर 2021

सलाहकार मंडल (Peer Review Committee)

प्रोफेसर विष्णु सरवदे, हैदराबाद (तेलंगाना)
प्रोफेसर आर.जयचंद्रन तिरूअनंतपुरम (केरल)
प्रोफेसर दिनेश कुशवाह, रीवा (मध्यप्रदेश)
डॉ. एन. एस. परमार, बड़ोदा (गुजरात)
प्रोफेसर दिलीप कुमार मेहरा, बी.बी. नगर (गुजरात)
डॉ. उमाकांत हजारिका, शिवसागर, (असम)
प्रोफेसर संजय एल. मादार, धारवाड (कर्नाटक)
प्रोफेसर गोविन्द बुरसे, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
डॉ. दादासाहेब सालुंके, महाराष्ट्र (औरंगाबाद)
प्रोफेसर अलका गड़करी, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
डॉ. साहिरा बानो बी. बोरगल, [illegible] (तेलंगाना)
डॉ. बलविंदर कौर, हैदराबाद (तेलंगाना)

मुख पृष्ठ- डॉ.आजम शेख, मैत्री ग्राफिक्स., सावंगी (ह),औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

प्रकाशन/मुद्रण

प्रकाशक रूपनारायण सोनकर की अनुमति से डॉ. एन. पी. प्रजापति एवं प्रोफेसर बलिराम धापसे द्वारा नमन प्रकाशन 423/A अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली 11002 में प्रकाशन एवं मुद्रण कार्य

संपादकीय / व्यवस्थापकीय कार्यालय

दून व्यू काटेज स्प्रिंग रोड, मसूरी-248179, उत्तराखण्ड दूरभाष: 0135-6457809 मो. 09410778718

शाखा कार्यालय

पी.डब्ल्यू. डी.आर-62 ए, ब्लाक कालोनी बैढ़न, जिला-सिंगरौली म.प्र. 486886, मो. 097529964467

सहयोग राशि-150/- रुपये, वार्षिक सदस्यता शुल्क (संस्था के लिए)-1000, रुपये पंचवार्षिक सदस्यता शुल्क (व्यक्ति के लिए)-2000/- रुपये पंचवार्षिक संस्था और पुस्तकालयों के लिए 3000/- रूपये, विदेशों में $50 आजीवन व्यक्ति 6000/- रुपये 10000/- रुपये

सदस्यता शुल्क एवं सहयोग राशि-इंडिया पोस्ट पेमेंट बैंक AC83671001 38282 IFSC Code-IPOS0000001,Branch -SIDHI(NIRAT [illegible]

नोट:- पत्रिका की किसी भी सामग्री का उपयोग करने से पहले संपादक की अनुमति आवश्यक है। संपादक - संचालक पूर्णतः अवैतनिक एवं अध्यावसायिक है। **नागफनी'** में प्रकाशित शोध-पत्र एवं लेख, लेखकों के विचार उनके स्वंय के हैं, जिनमें संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं। **"नागफनी"** से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल देहरादून न्यायालय के अधीन होंगे। अंक में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है। सारे भुगतान मनीआर्डर बैंक/चेक/ बैंक ट्रांसफर /ई-पेमेन्ट आदि से किये जा सकते हैं। देहरादून से बाहर के चेक में बैंक कमीशन 50/- अतिरिक्त जोड़ दें।

Website: http:naagfani.com

लेख भेजने के लिए Mail ID: nagfani81@gmail.com

नागफनी

अनुक्रम

पृष्ठ क्रमांक

संपादकीय..... 01

साहित्यिक विमर्श

1. इक्कीसवीं सदी की कहानियों में चित्रित सामाजिक यथार्थ- डॉ.पठान रहीम खान 02-04
2. उपनिवेशवाद के शिकंजे में ' मय्यादास की माडी ' - डॉ.सुमा एस. 05-06
3. विष्णु प्रभाकर के ध्वनि नाटकों का शिल्पगत अध्ययन-डॉ.कल्पना मौर्य 07-09
4. अप्रस्तुत योजना और छायावादी कविता -डॉ.समय लाल प्रजापति 10-11
5. विमर्शों में उलझता समकालीन साहित्य व समाज- डॉ.उर्विजा शर्मा 12-13
6. अज्ञेय की लम्बी कविता : 'असाध्य वाणी'-डॉ.सचिन कदम 14-15
7. समकालीन हिन्दी कविताओं में पर्यावरण चिंता-डॉ.सुनील पाटील 16-18
8. दामोदर मोरे की कविताओं में अम्बेडकरवादी चेतना-डॉ.शिराजोद्दीन 19-21
9. आम आदमी का उपनिषद: राम चरितमानस-डॉ.उमा वाजपेयी/अनीता मिमरोट 22-24
10. धूमिल की कविताओं में पारिवारिक चित्रण- आरती सिंह राठौर/ डॉ.रेशमा अंसारी 25-26
11. महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों में सामाजिक चित्रण- डॉ.सुशीला 27-29
12. सुशीला टाकभौरे के साहित्य में संघर्ष - डॉ.मंजुला चौहान 30-31
13. मंजुल भगत की कहानियों में बदलते पारिवारिक संबंध- सुनिता यादव 32-33
14. 'सभा पर्व ' उपन्यास में चित्रित जीवन और समाज-डॉ.मोहम्मद फीरोज खान 34-37
15. मुस्लिम समाज में चित्रित असमानता की भावना : ' कुठाँव' उपन्यास के संदर्भ में- शेख उस्मान 38-40
16. बाबुराव बागुल कृत ' विद्रोह ' कहानी में विद्रोही चेतना- डॉ.भानुदास आगेडकर/ डॉ.अरूण सोनकांबले 41-43
17. समकालीन कविता का अस्तित्व वादी रूप और मूल्यबोध-डॉ.मार्तण्ड कुमार द्विवेदी 44-48
18. 'सूरजमुखी अंधेरे के' उपन्यास में आत्मसंघर्ष एवं पवित्र प्रेम की अभिव्यंजना- डॉ.गौकरण जायसवाल 49-52
19. हिंदी और कन्नड मुस्लिम उपन्यासकारों का साहित्यिक योगदान- मेहराज बेगम सैयद/डॉ.राजु बागलकोट 53-55
20. लोककथा का मौलिक सर्जनात्मक प्रयोग: सींगधारी नाटक- ईषा वर्मा 56-57

दलित विमर्श

1. 'गोदान' के मिथ का विरोधी उपन्यास रूपनारायण सोनकर का उपन्यास 'सुअरदान'-प्रो.ओम राज 58-62
2. दलित,स्त्री और आदिवासी साहित्य की वैचारिकी-डॉ.सविता शर्मा 63-65
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं में वेदना और विद्रोह-डॉ.जयरामन पी.एन. 66-68
4. आधुनिक हिन्दी कहानियों में दलित चेतना- डॉ.विनय कुमार चौधरी 69-70
5. रूद्र प्रयाग जनपद में दलितों की स्थिति में परिवर्तन का ऐतिहासिक अध्ययन- प्रभाकर पाण्डेय 71-73
6. 'संघर्ष 'कहानी संग्रह में चित्रित दलित जीवन-डॉ.पी.महालिंगे 74-76
7. दलित जीवन की कथा ' अपने -अपने पिंजरे'- डॉ. ओम प्रकाश 77-79
8. हिंदी दलित आत्मकथाओं में विद्रोही स्वर- डॉ.अम्बर कुमार चौधरी 80-82
9. 'सद्गति' कहानी का फिल्मी रूपान्तरण : एक अध्ययन-डॉ.धीरेन्द्र कुमार 83-86
10. समकालीन हिंदी कविता में दलित प्रतिरोध के स्वर-मुकेश कुमार मिरोठा 87-89
11. 'अब और नहीं ..' में अभिव्यक्त दलित कविता की सामाजिक संस्कृति-शिवपाल 90-91

दलित जीवन की कथा 'अपने-अपने पिंजरे'

-डॉ. ओम प्रकाश (डी. लिट्)
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
आर. के. एस. डी कॉलेज, कैथल,
हरियाणा

भूमिका: भारतीय सामंतीय व्यवस्था में सदियों से स्त्री सबसे ज्यादा उत्पीड़ित दलित एवं शोषित है। स्त्री के अतिरिक्त एक ऐसा समाज भी है जो वर्णवादी व्यवस्था के आरम्भ से ही अवमानना एवं तिरस्कार का दंश झेल रहा है। मनुवादियों के अनुसार इसका मुख्य कारण यह भी रहा है कि इस साहित्य विशेषकर दलित साहित्य का अपना कोई सौंदर्यशास्त्र नहीं है। वास्तव में यह भ्रम के सिवा कुछ नहीं है। मनुवादी ताकतें अपना अस्तित्व बचाये रखने के लिए ऐसा भ्रम बनाए रखना चाहती है। बदलते परिवेश में इस साहित्य ने अपनी ताकत के बल पर साहित्यिक जगत में हलचल उत्पन्न की है। महाप्राण निराला के विषय में किसी कवि/शायर ने ठीक कहा था **"कहाँ तसलीम करता था जमाना बड़े जोरों से मनवाया हूँ।"** दलित साहित्य के साथ भी ऐसा ही हुआ है। आज अपनी अदम्य शक्ति, साहस और शौर्य के बल पर इस साहित्य ने साहित्यिक जगत में अपनी अलग पहचान बनाई है, उसी का परिणाम है कि अब दलित, शोषित, वंचित, पीड़ित को केंद्र में रख साहित्य रचा जा रहा है। वस्तुतः दलित साहित्य सदियों पुराने सामाजिक उत्पीड़न और आक्रोश को मुखरित करता है। समाज में परिव्याप्त जड़ स्थितियों के प्रति असंतोष जताता है। यह साहित्य बड़ी संजीदगी से व्यवस्था की जड़ता को उकेरता है। वर्तमान में देश के बहुसंख्यक दलित समाज का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अनुभव पहले से कहीं ज्यादा व्यापक हुआ है। समाज में होने वाले व्यापक परिवर्तनों के मद्देनजर तथाकथित वर्चस्ववादी ताकतों को आत्मावलोकन की आवश्यकता है।

हाशिए के समाजों में बहुजन समाज सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से अस्तित्वहीन है। यह समाज वर्चस्ववादी समाजों के बीच अस्मिता के लिए निरंतर संघर्षरत है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दलित सबसे नीचे पायदान पर है। आर्थिक दृष्टि से अभाव भरा जीवनयापन करने वाले अधिकांश दलित पुश्तैनी धंधों पर आश्रित है। आधुनिक समय में तकनीकी विकास तथा शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण पेशेवर परम्परित कार्यों के प्रति नई पीढ़ी का मोह भंग हुआ है। वैसे भी मशीनीकरण के कारण बढ़ती बेकारी तथा प्रतिस्पर्धा के चलते पुश्तैनी धंधे अब उनकी पहुंच से बाहर हो गए हैं। परिणामस्वरूप किसान-मजदूर और मालिक के संबंध में बदलाव आया है। अब खेती-बाड़ी का ज्यादा काम मशीनों से होने लगा है जिस कारण मजदूरों पर निर्भरता कम हुई है, फिर भी सामाजिक दृष्टि से पिछड़े तथा आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण दलितों की जीवन रेखा अधिकांश सामंती प्रवृत्तियों पर टिकी है। आज शिक्षा प्राप्ति के पश्चात दलितों की स्थिति में कुछ सुधार अवश्य हुआ है, किंतु यदि दलित थोड़ा-सा भी बराबरी का हक जताते हैं, उन पर अत्याचारों का सिलसिला शुरू हो जाता है। सामंतवादी प्रवृत्ति के लोगों का दलितों के प्रति व्यवहार अच्छा नहीं है, दलितों को गालियां देना, अपमानित एवं प्रताड़ित करना, सामाजिक बहिष्कार करना, उनकी इज्जत आबरू से खिलवाड़ करना आदि सामान्य बातें हैं, जिसे मनुवादी अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं। यदि कोई दलित इस दुर्व्यवहार के प्रति आक्रोश जताता है तो उसे सार्वजनिक अपमान का शिकार होना पड़ता है। वास्तव में दलित उत्पीड़न की घटनाएं निरंतर बढ़ रही हैं, इसका मुख्य कारण दलितों का जागरूक होना भी है। आज दलित अपने प्रति होने वाले शोषण के खिलाफ खड़ा होने लगा है जिसे ब्राह्मणवादी मानसिकता कतई सहन नहीं कर सकती। स्वयंभू ठेकेदार सामाजिक मर्यादा के नाम पर दलितों पर जुर्म करते हैं। दलित उत्पीड़न के लिए जाति विशेष की पंचायतें अपराधियों को बचाने के लिए अनैतिक फरमान जारी करती हैं, दलितों पर बंदिशें लगाई जाती है। बहुसंख्यक होने के बावजूद भी आर्थिक एवं सामाजिक रूप से पिछड़े दलित समाज की सत्ता में हिस्सेदारी न के बराबर है। वोट प्राप्ति के लिए दलितों को डराना-धमकाना, जबरदस्ती वोट हथियाना, शराब या धन का लालच देकर वोट खरीदना जैसी सामान्य घटनाएं हैं जिन्हें अन्यथा ले लिया जाता है।

वर्तमान समाज में दलित उत्पीड़न के मूल सामंती सोच के चलते दलित वर्ग आज भी दास अथवा बंधुआ मजदूर की श्रेणी में आता है। सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से हेय दलित यदि सामाजिक बराबरी की इच्छा रखता है तो उसे सामूहिक यातना झेलनी पड़ती है। दलितों पर होने वाले अत्याचारों का मुख्य कारण दलित श्रमिकों द्वारा न्यूनतम मजदूरी मांगना, बेगार से इंकार करना या फिर समय पर मजदूरी का तकाजा करना, परंपरागत कार्यों यथा मरे हुए पशुओं को उठाने में आनाकानी करना, मैला तथा साफ-सफाई के कार्यों से इनकार करना आदि प्रमुख है, जिसका खामियाजा उन्हें कड़े सामाजिक प्रतिबंधों के रूप में भुगतना पड़ता है। भू-स्वामी द्वारा उन्हें खेतों में घुसने, पशुओं के लिए चारा, बच्चों के लिए दूध तथा रोजमर्रा की वस्तुएं जुटाने पर पाबंदी आदि ऐसी सामान्य घटनाएं हैं जो सीधे तौर पर दलित उत्पीड़न की ओर संकेत करती है। दलितों पर लगातार बढ़ते अत्याचारों को देखते हुए भारतीय संसद में अनुसूचित जाति, जनजाति निरोधक अधिनियम पारित किया गया किंतु दलितों के प्रति हिंसा, क्रूरता और अमानवीय अत्याचारों का सिलसिला थमने का नाम नहीं ले रहा बल्कि ऐसे आंकड़ों में निरंतर वृद्धि होती चली गई। अभिप्राय यह कि दलितोत्थान के लिए बनाए गए सभी कानून केवल मात्र ढकोसला साबित हुए। दलितों को दलित बनाए रखने में सत्ता का बहुत बड़ा हाथ है। दलित आत्मनिर्भर न हों इसके लिए बनाई गई योजनाओं को क्रियान्वित करने का जिम्मा सवर्ण मानसिकता के लोगों के हाथों में है। दूसरी ओर देश का दलित कितना ही पढ़ लिख ले, मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा प्राप्त कर ले सवर्णों के लिए वह पैरों की जूती ही है। देश में आये दिन घटित होने वाली घटनाएं इसका प्रमाण है। दलित युवकों को काला मुंह कर सरेआम गलियों में घुमाना, विवाह-शादी के अवसर पर घुड़चढ़ी करने पर पिटाई करना, चुने हुए दलित पंच-सरपंचों को बे-इज्जत करना जैसी आम घटनाएं हैं, ऐसी निंदनीय घटनाओं का संज्ञान होने पर भी देश की अदालतें, मीडिया, जनप्रतिनिधि, समाजसेवी चुप्पी साध लेते हैं। हरियाणा जैसे सम्पन्न राज्य में तो ऐसी घटनाएं आए दिन होती हैं। ऐसी घटनाओं के पिछे सत्ता का बड़ा हाथ है। आखिर यह कैसा लोकतंत्र है? कैसी विडंबना है?

इतना अमानवीय अत्याचार होने पर भी देश की सत्ता जन-हितैषी होने का ढोंग रचती है। मोहन दास नैमिशराय ने अपनी आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' में ऐसे अनेक वाकयों को संजीदगी से रेखांकित किया है।

विषय प्रवेश:

वरिष्ठ दलित कथाकार मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' का पहला भाग सन (1995) तथा इसका दूसरा हिस्सा सन (2000) में सामने आया। समाज शास्त्रीय दृष्टि से 'अपने-अपने पिंजरे' एक अनुपम रचना है। डॉ. महीप सिंह के अनुसार "नैमिशराय ने 'अपने-अपने पिंजरे' में अपने जीवन की उन तल्ख और निर्मम सच्चाईयों को उकेरा है जिनमें मानवीय पीड़ा अपनी पूरी सघनता से व्यक्त हुई है।" वास्तव में यह आत्मकथा दलित जातियों चमार, भंगी तथा जाटवों के बीच ऊँच-नीच तथा भेदभाव का प्रामाणिक ब्यौरा होने के साथ-साथ सामंतवादी व्यवस्था द्वारा बनाए गए जाति, धर्म और वर्ण-व्यवस्था के उस संकीर्ण पिंजरे को तोड़ने की कवायद है जिसके लिए दलित वर्ग सदियों से संघर्षरत है। यह आत्मकथा बताती है कि दलित जातियों में विषम परिस्थितियों से जूझने का कितना मादा है, इन्हीं विषम परिस्थितियों से जूझते हुए एक दलित चिंतक का जन्म कैसे होता है। यह आत्मकथा उस समय, समाज और नारकीय परिस्थितियों से हमारा बोध कराती है जिसे दलित समाज भोगने के लिए विवश है। लेखक ने उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले के चमारों की स्थिति तथा उनके जीवन संघर्ष के बहाने बड़ी सरलता से अपने जीवन की कथा को बेबाकी से कह दिया है, साथ ही तात्कालिक व्यवस्था के प्रति आक्रोश भी जताया है। ब्राह्मणों ने अपने स्वार्थ के लिए समाज को जातियों, उप-जातियों, वर्णों, उप-वर्णों में बांटकर रखा है। यही काम आज के राजनीतिज्ञ भी कर रहे हैं। नैमिशराय अपनी आत्मकथा में मेरठ शहर की वस्तुस्थिति के बारे में लिखते हैं "हर जाति और वर्ग के लोग अपनी-अपनी पहचान में सिमटे हुए थे। शहर धड़कता था पर अलग-अलग स्वर में। बस्तियां थिरकती नाचती थी अलग-अलग बोलियों में। उन सब से मिलकर बना था यह शहर।"[1] गांव हो या शहर समाज में व्यक्ति की हैसियत पद-पैसा, जाति, वंश, कुल या गोत्र से ही आंकी जाती है। समाज में जाति एक ऐसा हथियार है जिसके बल पर बड़े-बड़े काम सध जाते हैं लेकिन इस जाति व्यवस्था में यदि कोई पिसा है तो बेचारा दलित ही है। ब्राह्मणवादी विचारधारा के लिए सबसे घृणित आविष्कार अस्पृश्यता है। महात्मा ज्योतिबा फुले और अंबेडकर ने छुआछूत के विरुद्ध संघर्ष किया लेकिन सवर्ण समाज सुधारकों की ओर से इस सामाजिक बुराई को दूर करने का लेशमात्र भी उपाय नहीं हुआ जिसकारण समाज में इस कोढ़ की जड़ें और गहरी होती चली गई। सूचना-संचार और तकनीकी क्रांति के विस्फोटक युग में हम एक नए विश्व की तस्वीर ईजाद कर रहे हैं, क्या जातिवाद या समाज के एक अंग की उपेक्षा कर इस सपने को साकार किया जा सकता है।

आज भी दलितों के प्रति सवर्णों का व्यवहार ऐसा है कि प्यासे व्यक्ति को पानी पिलाने में भी उनकी जाति आड़े आ जाती है। ऐसी ही एक घटना का उल्लेख करते हुए लेखक कहता है "तो म्हारे घर के अगे क्यों खड़े हो। जाओ सीधे-सीधे आगे चमारों के घर पड़ेंगे पैजे।' वे सांप की तरह फुंकारे थे। 'हमें पानी पिला दो, बड़ी प्यास लगी है'....."म्हारे घर चमारों की खातिर पानी ना है।"[2] और लेखक को जौहड़ के गंदे बदबूदार पानी पीने के लिए विवश होना पड़ता है। यह सर्वविदित है कि भारतीय जातिग्रस्त समाज में सबसे पहले जाति को लेकर ही सवाल किया जाता है। ऐसे ही लेखक ने मेला देखने के लिए जाते हुए बीच रास्ते हुई घटना का उल्लेख किया है "कुछ दूरी पर दो बैल गाड़ियां और मिली गाड़ीवान ने दो सवाल तड से कर दिए थे कहां से आ रहे हो। हममें से उसका जवाब कोई देता, दूसरा सवाल साथ-साथ कर दिया था- कौन जात हो। आगे पूरन की गाड़ी खड़ी थी। वह कुछ देर चुप रहा था। बा ने झटाक से उत्तर दे दिया था- "चमार दरवज्जे सो' बा का जवाब सुनते ही गाड़ीवान ने तिक-तिक करते हुए गाड़ी आगे बढ़ा ली। जैसे उससे हमारी गाड़ी छू न जाए।" आत्म कथाकार महसूस करता है कि जातीय दंश की पीड़ा झेलने वाला वह अकेला नहीं है बल्कि उसकी 'जात के सब लोग' हैं। लेखक के मन में ऐसे सैकड़ों सवाल हैं जिनका उत्तर किसी भी सभ्य समाज के पास नहीं है, फिर भला मेरठ की उस भोली-भाली, तिरस्कृत चुहड़े-चमारों की बस्ती के पास कैसे होगा ? निःसंदेह ऐसे सवाल है जो किसी भी सभ्य-समाज के लिए पीड़ादायक है। लेखक ने बड़े साहस के साथ इन प्रश्नों-समस्याओं को उठाया है। असल में जातिवाद ने दलितों को तमाम अधिकारों, साधनों-सुविधाओं से वंचित ही रखा है। लेखक की पीड़ा को इन शब्दों में सुना जा सकता है "हम लंबे समय से अपमान सहते आए थे, पर गुनाहगार न थे हम। हम हारे हुए लोग थे जिन्हें आर्यों ने जीतकर हाशिए पर डाल दिया था।" वेदना और करुणा से भरे इन शब्दों की गूंज लंबे समय तक झनझनाहट उत्पन्न करती है, जिन्हें सुन किसी भी विचारशील प्राणी को सोचने पर मजबूर होना पड़ता है। संभवतः सहनशीलता की इसी पराकाष्ठा के लिए डॉ. ओम प्रकाश बाल्मीकि ने नैमिशराय जी को बुद्ध की संज्ञा दे डाली है। यह तो रास्ते में किसी अनजान व्यक्ति से सुने कुछेक सवाल हैं जिन्हें सुन-समझकर भुलाया जा सकता है लेकिन मेरठ शहर के तो चप्पे-चप्पे पर जातीयता की छाप है। यहां गली मोहल्ले तक के नाम भी जाति के आधार पर रखे गए हैं जैसे किसी व्यक्ति की पहचान के लिए माथे पर नाम कुरेद दिया गया हो।

आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' में यह रहस्योद्घाटन हुआ है कि अनपढ़ता, सामाजिक शोषण, अभाव और गरीबी सब मिलकर दलितोत्थान के मार्ग में बाधा उत्पन्न करते हैं। शिक्षा हमारा मौलिक एवं संवैधानिक अधिकार है। शिक्षा के मंदिरों में जात-पात, भेदभाव दंडनीय अपराध है, फिर भी शैक्षिक संस्थानों में दलित बच्चों के प्रति शिक्षकों का व्यवहार असामान्य है, परिणामस्वरूप अधिकांश विद्यार्थी बीच में ही स्कूली शिक्षा छोड़ देते हैं। हम कहें कि ज्ञान-शिक्षा के अभाव में अनेक प्रतिभाएं असमय ही कुंद हो जाती हैं। सामाजिक व्यवस्था की झांकी स्कूल में भी उसी तरह मिलती है जैसे समाज में। स्कूल में भी विद्यार्थियों से भेदभाव किया जाता है उनको प्रार्थना के समय अलग-अलग खड़ा किया जाता है। सवर्ण जाति के मास्टरों का दलितों के बच्चों को अंट-शंट नामों से पुकारना आम बात है। अपमानित करने का एक तरीका यह भी है। स्कूलों में अधिकतर शिक्षक बच्चों को मां-बहन के नाम से बुलाते थे और उल्टी-सीधी गालियां निकालना या फिर बेतुके संबोधन जैसे, गधा, सुअर, खच्चर, कुत्ता कहना तो आम बात होती थी। भारतीय संस्कृति के संवाहक इन शिक्षकों की कथनी और करनी में बड़ा अंतर है। लेखक ने लिखा है कि "सुबह बच्चों को पढ़ाते हमें अहिंसा में विश्वास रखना चाहिए, किसी को बुरा या कड़वा नहीं बोलना चाहिए और थोड़ी देर बाद ही लात, घूंसे, थप्पड़ तथा

ISSN-2321-1504 Naglani No. UTTHIN/2010/34408

डडों से बच्चों की धुनाई भी कर डालते। उन्हें न जाने क्या-क्या बोलते। दोपहर होने से पहले बच्चों को समता, बराबरी का पाठ पढ़ाते और दोपहर बाद जब उन्हें प्यास लगती तो चुपके से अपना गिलास निकालकर नल पर जाकर पानी पी आते। बच्चों के लिए पानी है या नहीं, इसकी चिंता उन्हें नहीं होती थी।" वस्तुत: ये ऐसी घटनाएं हैं जो बच्चों के मन में भविष्य निर्माताओं के प्रति वितृष्णा पैदा करती है।

मोहनदास नैमिशराय ने अपनी आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' में दलित समाज की आर्थिक स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है। यह इस बात का प्रमाण है कि मेहनतकश होने के बावजूद भी अधिकांश दलित कर्ज के बोझ तले दबा हुआ है। दलित पुश्तैनी भूमिहीन हैं, सेठ-साहूकार, जमींदार उनका जमकर शोषण करते हैं। शोषण की मार झेलते ये दलित जीवन की मूलभूत सुविधाओं से वंचित अभाव का जीवन व्यतीत करते हैं। मेरठ शहर की मलिन बस्तियों में रहने वाले दलितों की हालत इतनी पतली है कि दिन-रात कड़ी मेहनत करने के बाद भी वे नंगे पांव रहते हैं। "दलित जाति का दस्तकार बड़ी लगन और मेहनत से फैंसी चप्पल बनाता। बाजार में इसकी खूब मांग थी। इन्हीं को बेचकर न जाने कितने लाला/बनिए करोड़पति बन गए थे। पर दस्तकारों में उस समय कोई लखपति भी नहीं बन सका था। इन दस्तकारों को एक जोड़ी चप्पल का सिर्फ एक रुपया ही मिलता था, सैंडल पर डेढ या दो रुपए मिल जाते थे। पर दुकानदार इन्हें कभी भी पूरे पैसे नहीं देते थे। वे थोड़े पैसे देकर पर्चा थमा देते थे-इस तरह दलित की हर जगह कटौती होती थी।"[1] सामंतवादी शोषण ने दलितों, किसानों श्रमिकों को घोर गरीबी की दलदल में धकेला है। मोहनदास के परिवार को भी इन चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। लेखक लिखता है कि अपने घर की सेहत सुधारने के लिए सेठ से लिया गया कर्ज परिवार के लिए तनाव का पर्याय बन "आर्थिक रूप से जितना हम उबरने के लिए प्रयास करते उतना ही गरीबी की दलदल में फंसते जा रहे थे। पाँच हजार रुपए कर्ज लिए थे। कर्ज पर ब्याज बढ़ता ही जा रहा था और जैसे-जैसे ब्याज बढ़ता था फिर उस पर चक्रवर्ती ब्याज भी लगने लगा था। ब्याज पर ब्याज जैसे लकड़ी को दिमक चाटने लगती है। वैसे ही बा को कर्ज पर ब्याज की चिंता रात-दिन सताने लगी थी। बा का शरीर चिंता की गठरी बन गया था। वह अपने आप में सिमटने लगा था।"[2] निसंदेह आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जड़ प्रचलित जड़ परंपराओं से मुठभेड़ करती है। हिंदू समाज में प्रचलित अंधविश्वासों को पर कड़ा प्रहार करती है। लेखक हिंदू धर्म में सर्वेसर्वा कहे जाने वाले पंडे-पुरोहितों की काली-करतूतों से भलीभांति वाकिफ है। आस्था के प्रतीक देवालयों में पुजारियों द्वारा झाड़-फूंक के नाम पर कैसे महिलाओं की अस्मत से खिलवाड़ होता है इसका यथार्थ चित्रण लेखक ने किया है "वह उसी मंदिर में जाती थी जिसमें पुजारी था। पहले भभूत देता था फिर रात में बुलाने लगा। बाद में उनके बीच जिस्मानी संबंध हो गए। फलस्वरूप उसे गर्भ रह गया।"[3] आए दिन होने वाली यह कुत्सित घटनाएं समाज के वीभत्स को उजागर करती है। लेखक ऐसे अंधविश्वासों एवं पाखंडों के प्रति आक्रोश व्यक्त करता है दूसरी ओर वह अभाव, उपेक्षा और अपमान भरे नारकीय जीवन से मुक्ति का आह्वान भी करता है। कहा जा सकता है कि लेखक ने अपनी आत्मकथा के माध्यम से न केवल दलित समाज बल्कि हिन्दू समाज की संकीर्णताओं को उकेरने का सफल प्रयास किया है।

उपसंहार:

समग्रत: कहा जा सकता है कि दलित साहित्य भारतीय समाज की विसंगतियों, रूढ़ियों और सदियों से चली आ रही वर्ण-व्यवस्था के जंजाल को तोड़ने का साहित्य है। यह साहित्य सदियों से एक ही ढर्रे पर लिखे जा रहे सामंतवादी साहित्य पर ब्रेक लगाता है। हम कह सकते कि दलित साहित्य किसी लाग लपेट सीधी सच्ची बात कहने का साहस रखता है। दलित साहित्य का स्वर विद्रोही, आक्रोशमयी और बेहद बेरहम रहा है। मार्क्स की भांति समता और न्याय की मांग इस साहित्य का प्रमुख स्वर है। यह साहित्य बहुत कुछ अंशों में फुले और अंबेडकरवादी सोच का परिणाम है। यह साहित्य कमजोर कंधों पर खड़ा हुए भी कमजोर नहीं है बल्कि एक ऐसी अछूती दुनिया के यथार्थ का साक्षात्कार है जो सदियों से मानवीय अधिकारों से वंचित होकर जीने की जद्दोजहद कर रही है।

दलित आत्मकथाएं इस कड़ी में अपनी महती उपस्थिति दर्ज कराती है। ये आत्मकथाएं इस बात का प्रमाण है कि शिक्षा, रोजगार, व्यवसाय के कार्य स्थलों पर दलितों के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है। वह कैसे जी रहे हैं? कितने चेतना संपन्न हुए हैं? उन्हें कितनी आजादी नसीब हुई है? ये सब बुनियादी सवाल है जो अंतरात्मा को झकझोरते हैं। निःसंदेह अब दलितों को सहायता नहीं अधिकारों की दरकार है। बदलते परिवेश में समाज को दलित समुदाय को बराबरी का दर्जा देना ही होगा तभी समाज का समुचित विकास हो सकता है। वस्तुत: ये आत्मकथाएं एक नया समाजशास्त्र रच रही है। व्यापक अर्थ में कि अब गरीबी, असमानता, भेदभाव, अशिक्षा के पैर को तोड़ने में दलित बहुत हद तक सफल रहा है। यह साहित्य हमें सोचने पर मजबूर करता है कि हमें अब दलितों के प्रति अपनी दकियानूसी सोच को बदलना होगा उन्हें समाज का महत्वपूर्ण अंग मानकर उनके प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाना होगा।

संदर्भ सूची:

1.मोहनदास नैमिशराय, अपने-अपने पिंजरे, भूमिका , वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
2.वही, पृष्ठ 12
3.ओमप्रकाश बाल्मीकि, जूठन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली: भूमिका
4. वही, पृष्ठ. 68
5. वही, पृष्ठ. 18
6. वही, पृष्ठ. 34
7. वही, पृष्ठ. 60
8. वही, पृष्ठ. 94
9. वही, भाग-दो, पृष्ठ. 30